International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
January - 2018, Volume-5, Issue-1 P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

संस्कृत वाङ्मय में प्रकृति एवं पर्यावरण संतुलन (वैदिक संहिताओं के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. अलका बागला
सह–आचार्य, (संस्कृत)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,झालावाड़

श्रीमती विनीता (गुप्ता) राय
सह–आचार्य, (संस्कृत)
राजकीय कला महाविद्यालय, कोटा

सृष्टि में सर्जनात्मक चेतनशक्ति का होना, सृष्टि में क्रम तथा नियमबद्धता का होना, सृष्टि में विशालता का होना, अस्थायित्व में स्थायित्व का होना। ये सब लक्षण जड़ जगत्, वनस्पति एवं प्राणी जगत् में सर्वत्र पाए जाते हैं जिनके आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि विश्वगत चेतनशक्ति की सत्ता को माने बिना यह सब होना संभव नहीं है।

अपाणि पादौ जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रुणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्रयं पुरुषंमहान्तम्।।[1]

आदि काल से मानव और प्रकृति का अटूट सम्बन्ध रहा है। सभ्यता के विकास में प्रकृति की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। सर्वप्रथम कोई भी जीवधारी अथवा मनुष्य प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए उसके अनुकूल होने का प्रयास करता है। अतः अनुकूलन की प्रक्रिया धरती पर जीवन को बनाये रखने वाली एक कुंजी है जो उसे विकसित होने का निरन्तर अवसर प्रदान करती है।

आज औद्योगिक युग में पर्यावरण का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए मनुष्यों द्वारा किया जा रहा है, उससे प्रकृति में असंतुलन होने का खतरा बढ़ता जा रहा है। जीव–जन्तु, पेड़–पौधे प्रकृति के महत्त्वपूर्ण अंग है। जब ये समृद्ध होते हैं तो हमें जीवन एवं निरोगता प्रदान करते हैं और जब ये दूषित हो जाते हैं तो हमारी चिन्ता का विषय बन जाते हैं। इसमें किसी भी प्रकार का अनावश्यक हस्तक्षेप सम्पूर्ण विश्व के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है। इस समय न केवल भारत अपितु सम्पूर्ण विश्व पर्यावरण प्रदूषण की समस्या से भयाक्रान्त है।

पर्यावरण संतुलन से तात्पर्य– जीवों के आस–पास की समस्त जैविक–अजैविक परिस्थितियों के बीच पूर्ण सामंजस्य से है।

कल्याणकारी संकल्पना, शुद्ध आचरण, मैत्री भाव, शांति, कर्मशीलता, प्रेम, निर्मल वाणी एवं सुनिश्चित गति वेदों की मूलभूत विशेषताएँ हैं और पर्यावरण संतुलन भी मुख्यतः इन्हीं गुणों पर आधारित है। सभी भारतीय दर्शन पंच महाभूतों की बात कहते है।

वैदिक काल में सृष्टि साम्यावस्था में थी। वेदो में जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, वनस्पति, अंतरिक्ष, आकाश आदि के प्रति असीम श्रद्धा प्रकट करने पर अत्यधिक बल दिया गया है। तत्त्वदर्शी ऋषियों के अनुसार जीवन–यापन करने पर पर्यावरण असंतुलन की समस्या ही उत्पन्न नहीं हो सकती है। हमें पृथ्वी की रक्षा करनी चाहिए। वेद वाक्य है–

माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु।[2]

पुत्र के निर्वचन के अनुसार – 'पुं नामकात् नरकात् त्रायते इति पुत्रः।' अतः पृथिवी रूप माता की रक्षा करना मानव रूप पुत्र का अपरिहार्य धर्म है। इस हेतु उसको वृक्षारोपण, मृदा व जल संरक्षण इत्यादि महत्त्वपूर्ण कार्य करने होंगे।

वृक्ष या वनस्पतियां पृथ्वी की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में तथा वर्षा की मात्रा में वृद्धि हेतु सहायक है। अतः वनस्पतियों की वृद्धि के लिए स्तुति की गई है–

वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं नि षू दधिध्वमखनन्त उत्सम्।[3]

यजुर्वेद में वनस्पति को शांति का कारण भी बताया गया है– **वनस्पतिं शमितारम्।**[4]

प्राचीनकाल में मानव जीवन पूर्णतया नैसर्गिक शक्तियों पर आश्रित था। ऐसी मान्यता थी कि निसर्ग में मानव का कल्याण या अकल्याण करने की अद्भुत शक्ति है। वेदों में इन्हीं प्राकृतिक शक्तियों की प्रसन्नता एवं इनसे अपने कल्याण एवं सुख–समृद्धि की प्राप्ति के लिए स्तुतियों का विधान किया गया है।

वैदिक उपासना में पर्यावरण की उपासना के रूप प्रतीत होते हैं। प्राकृतिक शक्तियों की यह उपासना श्रद्धा से युक्त कृतज्ञता की अभिव्यक्ति थी। यद्यपि प्राचीनकाल में पर्यावरण प्रदूषण जैसी कोई समस्या नहीं थी, फिर भी ऋषियों ने आत्मरक्षा की कामना के लिए यह भावनाएँ व्यक्त की हैं–

मधु वाताऽ ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः।।
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवँ् रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता।।
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँन्नस्तृ सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तुनः।।[5]

प्राकृतिक शक्तियों में अवांछनीय परिवर्तनों के कारण आज जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, मृदा प्रदूषण व इलेक्ट्रोनिक प्रदूषण की समस्याएं चारों ओर व्याप्त हैं।

ऋग्वेद में 'अप्सु अंतः अमृतं, अप्सु भेषणं' के रूप में जल का वैशिष्ट्य बताया गया है। अर्थात् जल में अमृत है, जल में औषधि गुण विद्यमान रहते हैं व जल को विधाता की प्रथम सृष्टि माना जाता है। कालिदास ने भी मंगलाचरण में अष्टमूर्तिशिव की पहली मूर्ति को जल स्वरूप बताया है– **" या सृष्टिः स्रष्टुराद्या।"**[6]

अतः आवश्यकता है जल की शुद्धता व स्वच्छता को बनाए रखने की, अथर्ववेदीय पृथ्वीसूक्त में जल तत्त्व पर विचार करते हुए उसकी शुद्धता को स्वस्थ जीवन के लिए नितान्त आवश्यक माना है– **''शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु।''**[7]

निःसंदेह जल संतुलन से ही भूमि में अपेक्षित सरसता रहती है। पृथ्वी पर हरीतिमा छायी रहती है और वातावरण में स्वाभाविक उत्साह दिखाई देता है। समस्त प्राणियों का जीवन सुखमय तथा आनन्दमय बना रहता है–

'वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता सा नो दधातु।
भद्रया प्रिये धामनिधामनि।।'[8]

जल के साथ–साथ सभी ऋतुओं को अनुकूल रखने का वर्णन भी वेदों में मिलता है। ऋग्वेद में स्पष्टतया व्यंजित है–

''उतो स मह्यं इदुंभिः युक्तान् षट् सेषिधत्।''

वायु में जीवनदायिनी शक्ति है इसलिए इसकी स्वच्छता पर्यावरण की अनुकूलता के लिए परम अपेक्षित है। मनुष्य के लिए जो प्राणवायु चाहिए वे पेड़–पौधे ही प्रदान कर सकते हैं। वायुमण्डल में जो ऑक्सीजन है उसे मनुष्य श्वास लेकर कार्बनडाइऑक्साइड में बदल देता है। प्राणघातक गैस को पेड़–पौधे स्वयं भक्षण करके मनुष्य के लिए ऑक्सीजन प्रदान करते हैं। प्रकृति के इस संतुलन को मनुष्य इन दिनों विश्रृंखलित कर रहे हैं।

वेदों में वायु की स्तुति की गई है, जिसमें जीवों का निरन्तर विकास होता रहे। परमात्मा की चर एवं अचर सृष्टि में जो क्रियात्मक शक्ति है उसको प्राणशक्ति कहते हैं। प्राण शक्ति के कारण ही मानव, पशु–पक्षी, कीट–पतंग, वृक्ष, लता, गुल्म एवं पर्वत आदि के अवयवों में उपचय तथा अपचय के कारण वृद्धि एवं ह्रास होते हैं। मनुष्य आदि के शरीर में जो रक्त का संचार होता है वह प्राण शक्ति की ही क्रिया है। वृक्षों में जो रस का संचार हो रहा है वह प्राण क्रिया से ही हो रहा है।

छान्दोग्योपनिषद् – **सर्वाणि हवा इमानि भूतानि प्राण मेवाभि**
संविशान्ति प्राणमभ्युज्जिहते।[9]

यजुर्वेद में **''मित्रस्यांह चक्षुषा सर्वानि भूतानि समीक्षे''** का संकल्प व्यक्त है अर्थात् सभी प्राणियों के प्रति सहृदयता का परिचय देना ही जीवन का सही लक्षण है।[10]

'' राष्ट्रं प्रजा राष्ट्रं पशवः'' – जनता तथा पशुधन ही राष्ट्र हैं।

असपत्नाः प्रदिशो में भवन्तु न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु।[11]

आज जिसे पारिस्थितिकी तंत्र कहते हैं उसमें भी तो रचना तथा कार्य की दृष्टि से विभिन्न जीवों और वातावरण की मिली–जुली इकाई का ही स्वरूप विश्लेषण किया जाता है।

लोकोक्ति है– 'जब तक सांस, तब तक आस।' परन्तु जब सांस ही जहरीली हो जाए, तब उससे जीवन की क्या आशा की जा सकती है? वस्तुतः सांस की सार्थकता वातावरण की मुक्तता में निहित है। आज वातावरण मुक्त है कहाँ? मुक्त वातावरण का अर्थ है– आवश्यक गैसों की मात्रा में संतुलन का बना रहना। चूंकि पादप एवं जन्तु दोनों ही वातावरण संतुलन के प्रमुख घटक हैं , इसलिए दोनों ही का संतुलित अनुपात में रहना आवश्यक है।

पेड़ों के अभाव में हवा के वेग, शुष्कता और मौसम के असंतुलन के कारण ही रेगिस्तान पैदा होते हैं। हिन्दु जाति के आचार–विचार वैज्ञानिक तत्त्वों से ओत–प्रोत हैं। विशेष रूप से वृक्ष पूजन विज्ञान तो सूक्ष्म अनुसंधान का सूचक है। यों तो सभी वृक्ष लाभ के हैं पर वट, नीम, पीपल, तुलसी एवं आंवला के वृक्ष रासायनिक दृष्टि से बड़े ही उपयोगी हैं इसलिए इनकी पूजा करना, जल चढ़ाना , दीपक जलाना आदि को धर्म में सम्मिलित कर लिया गया है।

इन परम्पराओं के पीछे यदि कोई महत्त्वपूर्ण तथ्य है तो वह यह है कि वनों व वृक्षों का महत्त्व समझें, अपने स्वास्थ्य व समृद्धि से सम्बन्धित प्राकृतिक संतुलित संरचना का महत्त्व समझें।

वृक्ष में देवत्व की प्रतिष्ठा स्वीकार करते हुए गीता में पीपल को भगवान् स्वरूप कहा गया हैं

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः, गन्धर्वाणां चित्ररथं सिद्धानां कपिलो मुनिः।[12]

इसके विपरीत आज पेड–पौधों की निर्ममता पूर्वक कटाई से वातावरण में कार्बनडाइऑक्साइड की मात्रा में अतिशय वृद्धि हो रही है। इससे तापमान अनपेक्षित मात्रा में बढ़ता जा रहा है जो पर्यावरण के लिए संकट का सूचक है।

निःसंदेह प्रकृति विज्ञान में असंतुलन उपस्थित करना विनाश को आमंत्रण देना है। ऋग्वेद में इसकी निन्दा की गयी है–

मा काकम्बीरमुद्वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः।

मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः।[13]

अर्थात् जिस प्रकार दुष्ट बाज पक्षी दूसरे पखेरुओं की गर्दन मरोड़ कर उन्हें दुःख देता और मार डालता है, तुम वैसे न बनो और इन वृक्षों को दुःख न दो, इनका उच्छेदन मत करो, यह पशु–पक्षियों और जीव जन्तुओं को शरण देते हैं।

हम उन ऋषियों के आदेशों का पालन कर रहे थे। भले ही उनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को न जान पाए हों, पर उन आज्ञाओं का पालन करने से उन लाभों से लाभान्वित रहे ही हैं । तुलसीदास जी ने भी रामराज्य के सुखों का वर्णन करते हुए लिखा है–

फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन, रहहि एक संग गज पंचानन।
लता विटप मांगे मधु यव ही, मन भावती धेनु पय स्रवहीं।।

अर्थात् उस समय जंगलों में बहुत वृक्ष फलते थे। यह स्थिति तब रही होगी जब वृक्षों के प्रति आदर का भाव रहा होगा तथा वृक्षों को अधिक मात्रा में लगाया जाता रहा होगा। उस समय की प्रकृति भी संतुलित थी। नदियां बराबर बहती रहती थीं, समुद्र अपनी मर्यादा में रहता था। इन सब सुविधाओं के पीछे वृक्षों एवं वनस्पतियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती थी। यदि हम उन आदेशों का भली–भांति पालन करते थे जो मानवीय जीवन की सुव्यवस्था के लिए उपयोगी व आवश्यक थे । अब इन आज्ञाओं की अवज्ञा हो रही है तो उसके सामुहिक दुष्परिणाम भी हमारे सामने हैं।

धर्मशास्त्रों में प्राकृतिक आपदाएं, दैवीय उत्पात, महामारी, भूकम्प , अकाल, धूमकेतु, दर्शन आदि होने पर उनको शान्त करने के लिए भी मांगलिक पाठ किये जाते थे–

शान्ति स्वस्त्यय नै दैवोपद्यातान् प्रशमयेत्।[14]

ऋग्वेद में अग्नि को पिता के समान कल्याण करने वाला कहा गया है–

अग्ने सूनवे पिता इव नः स्वस्तये आ सचस्व।[15]

वेद का शुभारंभ ही 'अग्नितत्व' के स्तवन से होता है जो सफल जीवन का अग्रणी निर्माता होता है। उसे स्वयं आगे आकर समस्त परिवेश का हित करने वाला, सामाजिक संगठन का सच्चा संचालक तथा शुभदायक माना गया है।

'अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।'[16]

अग्नि का यह स्तवन समाज के संतुलन का संकेत करता है। जहाँ त्याग की भावना नहीं होती,वहाँ स्वार्थ की प्रवृत्ति बढ़ती है और कटुता उत्पन्न हो जाती है जो असंतुलन का मूल कारण सिद्ध होता है।

श्रीमद्भागवत में विश्वकल्याण की कामना के भाव निहित है अर्थात् जीवन का लक्ष्य तत्त्वज्ञान है स्वार्थपूर्ति नहीं।

न हिंस्याद्भूतजातानि न शापेन्नानृतं वदेत्।
न छिन्द्यान्नखरोमणि न स्पृशेद्यदमंगलम्।।[17]

ऋषियों ने प्रकृति और मानव की आवश्यकताओं के मध्य सामन्जस्य स्थापित किया है। अपनी निजी व्यक्तिगत आवश्यकताएँ घटाते रहना और समय शक्ति तथा योग्यता का अधिकांश भाग विश्वाहित में लगाना हमारा

आदर्श रहा है। अपनी वस्तु की तरह विश्व की समस्त वस्तुओं को अपने प्रेम की छाया में रखो। सबको आत्म भाव और आत्म दृष्टि से देखें –

ईशा वास्यमिदं सर्वं सत्किंच जगत्यां जगत्।

तेन व्यक्तेन भुंजीथा मा गृधःकस्यस्विद्धनम्।।[18]

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मयेवानुपश्यति ।

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।[19]

महर्षि यास्क ने अग्नि को पृथ्वी स्थानीय, वायु को अंतरिक्ष स्थानीय एवं सूर्य को द्युस्थानीय देवता के रूप में महत्त्वपूर्ण मानकर सम्पूर्ण पर्यावरण को स्वच्छ, विस्तृत तथा संतुलित रखने का भाव व्यक्त किया है।

इन्द्र भी वायु का ही एक रूप है। इन दोनों का स्थान अंतरिक्ष में है। द्युलोक से तात्पर्य आकाश से ही है। अंतरिक्ष से ही वर्षा होती है और आंधी–तूफान भी वहीं से आते हैं। सूर्य आकाश से प्रकाश देता है, पृथ्वी और औषधियों के जल को वाष्प बनाता है तथा मेघ का निर्माण करता है। पृथ्वी को जीवों के अनुकूल बनाए रखना इनका उद्धेश्य है। अग्नि केवल पृथ्वी पर ही नहीं है अपितु अंतरिक्ष में विद्युत के रूप में और द्युलोक में सूर्य रूप में भी विद्यमान है। अभिप्राय है कि ये सब एक सूत्र में सम्बद्ध हैं। यही प्राकृतिक अनुकूलता है तथा पर्यावरण संतुलन का अन्यतम निदर्शन है।

वैदिक ऋषियों ने प्राकृतिक तत्त्वों में केवल देवत्त्व की भावना का ही प्रतिस्थापन नहीं किया अपितु इससे भी बढ़कर मानवीय सम्बन्धों की अभिव्यक्ति का स्नेहिल मार्ग प्रशस्त किया हैं। विश्व का भरण–पोषण करने वाली औषधियाँ माता के समान रक्षा करती है–

औषधीरिति मातास्तद् वो देवी रूपब्रवे।[20]

वृक्ष वनस्पतियों के प्रति आत्मीयता का निदर्शन करने वाला अरण्यानी सूक्त पर्यावरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।[21]

महाभारत में वृक्षों को धर्मपुत्र मानकर इनके संरोपण एवं संवर्द्धन को अत्यन्त श्रेष्ठ बताया है।

पुत्रवत्परिपाल्याश्च पुत्रास्ते धर्मतः स्मृतः।[22]

महाकवि कालिदास कृत रघुवंश में एक देवदारु का वृक्ष स्वयं महादेव द्वारा पुत्र के रूप में अपनाया जाता है और पार्वती पयोघट से उसे सींचती है।[23]

अभिज्ञान शाकुन्तलम् में वनस्पतियों के प्रति जिस स्नेहिल भावना की अभिव्यक्ति हुई है वह उस समय के पर्यावरण चेतना का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप प्रस्तुत करता है।

महर्षि कण्व के आश्रम का सजीव एवं चित्ताकर्षक वर्णन पर्यावरण संतुलन का ही परिचायक है। 'आश्रमपदं शान्तम्' जिस आश्रम में नीवार(धान) को तोते अपने बच्चों को खिलाते वहीं धान मुनिजन भी खाते है तथा वहाँ मृग निर्भय विचरण करते हैं।[24]

आज हिंसा से विश्व पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है, उससे कर्म में असंतुलन उपस्थित हो गया है। इससे बचने के लिए वेद प्रतिपादित सात्त्विक भाव अपनाना होगा–

'स्वस्तिपन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमयाविव।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता संगमेमद्धि।'[25]

इसी से ऋषि का आशीर्वादात्मक उद्‌गार है–

'पृथ्वीः पूः च उर्वी भव।'[26]

अर्थात् समग्र पृथ्वी, सम्पूर्ण परिवेश परिशुद्ध रहे, नदी, पर्वत, वन–उपवन सब स्वच्छ रहें, गाँव–नगर सबको विस्तृत और उत्तम परिसर प्राप्त हों, तभी जीवन का सम्यक विकास हो सकेगा। पर्यावरण को स्वच्छ, सुन्दर रखने का आग्रह केवल भावनात्मक स्तर पर किया गया हो ऐसी बात नहीं है। वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रक्रिया में भी सूर्य को पिता, पृथ्वी को माता और किरण समूह को बंधु के समान आदर देने का स्पष्ट निर्देश है। आज तो गलत प्रतिस्पर्द्धा के कारण विश्व पर्यावरण विषाक्त बनता जा रहा है। प्रशीतन एवं वातानुकूलन. ....कृत्रिम प्रयास परिस्थिति के लिए अभूतपूर्व संकट उत्पन्न कर रहे हैं।

वेद का स्पष्ट निर्देश है कि लोग प्रकृति के प्रति सदा पूर्ण श्रद्धा रखें और आनन्दमय जीवन व्यतीत करने के निमित्त उससे पर्यावरण की अनुकूलता प्राप्त करते रहें। शुक्ल यजुर्वेद का शाश्वत संदेश है– 'मधुयुक्त सरस – शुद्ध पवन गतिशील रहे , सागर मधुपूर्ण वर्षण करें' । ओज प्रदान करने वाली अन्नादि वस्तुएँ भोजन के बाद मधु सदृश सुकोमल बन जाएं। रात के व्यतीत होने के साथ ही दिन भी मधुर रहे। पृथ्वी की रज से लेकर अंतरिक्ष तक मधु संयुक्त हो, न केवल जीवित मनुष्यों का अपितु पितरों का जीवन भी मधुमय रहे। सूर्य मधुमय रहे, गायें मधुर दूध देने वाली हों तथा निखिल ब्रह्मांड मधुर रहे।[27]

वैश्विक दृष्टि में सार्वभौमिक पर्यावरण के लिए प्राकृतिक शक्तियों के संतुलन की वैसी ही नितान्त आवश्यकता है जैसी तत्त्वदर्शी , क्रान्तदर्शी ऋषियों ने मंगल कामना की थी ।

ओं द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथ्वी शान्तिरापःशान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिः सर्वं शान्तिः।
शान्तिरेव शान्तिः सामाशान्तिरेधि।।[28]

आधुनिक परिवेश में भी परम्परागत दिनचर्या, संस्कार, व्रत, अनुष्ठान, क्रिया–कर्म, पूजा–पद्धति, त्यौहार, नृत्यगीत इत्यादि लोक जीवन आदि क्रियाओं में पर्यावरण संतुलन की व्यापक भावना अन्तर्निहित है।

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

सन्दर्भ पुस्तकें–

1.श्वेताश्वतर उपनिषद्3–19

2.अथर्ववेद–12–1–12

3.ऋग्वेद 10–101–11

4.यजुर्वेद–28–10

5.यजुर्वेद–13. 27–29

6.अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1–1

7.अथर्ववेद 12–1–30

8.अथर्ववेद 12.1.52

9.अथर्ववेद 1/11/5

10.तैतरीय संहिता 3/4/8

11.अथर्ववेद–19.14.1

12.गीता–10.26

13.ऋग्वेद 6/48/17

14.विष्णुधर्म शास्त्र अ. 3

15.अग्निसूक्त

16.ऋग्वेद –1.1.1

17.भागवत् 6/18/47

18.ईशावास्योपनिषद् मंत्र सं.1

19.ईशावास्योपनिषद् मंत्र सं.6

20.ऋग्वेद.10.17.4

21.ऋग्वेद 10.146–1.6

22.अनुशासनपर्व–58

23.रघुवंश 2.36

24.अभिज्ञान शाकुन्तलम् 1–14

25.ऋग्वेद 2.11.4

26.ऋग्वेद 1.555

27.शुक्ल यजुर्वेद 13.27.29

28.यजुर्वेद –36